प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में धर्म
(मनु एवं कौटिल्य के विशेष सन्दर्भ में)

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में धर्म
(मनु एवं कौटिल्य के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. निशा गोयल

नमूना • SAMPLE

अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस
दिल्ली (भारत)

द्वारा प्रकाशित



अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस

Publisher, Distributor, Exporter having an Online Bookstore

एल–9ए, प्रथम तल, गली न0 42,
सादतपुर एक्सटेंसन, दिल्ली–110094 (भारत)
Phone : 9968628081, 9555149955, 9013387535
E-mail : akhandpublishinghouse@gmail.com
akhandpublishing@yahoo.com
Website : www.akhandbooks.com

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में धर्म
(मनु एवं कौटिल्य के विशेष सन्दर्भ में)

संस्करण : 2021
© लेखक
ISBN: 978-81-948850-7-8

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से को प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इलेक्ट्रॉनिक या किसी अन्य माध्यम द्वारा पुनः प्राप्ति समेत किसी भी रूप में प्रतिलिपिकृत, अनुवादित, संगृहीत नहीं किया जा सकता है और न ही किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम द्वारा इसे प्रसारित किया जा सकता है।

इस पुस्तक में लेखक द्वारा व्यक्त विचार उनके व्यक्तिगत हैं जिसका प्रकाशक से कोई संबंध नहीं है।

भारत में प्रकाशित

झपसू यादव द्वारा 'अखण्ड पब्लिशिंग हाउस' के लिए प्रकाशित। वी.एम. ग्राफिक, दिल्ली द्वारा कवर डिजाइन व शब्द संयोजन तथा आरना इंटरप्राइजेज, दिल्ली से मुद्रित।

SAMPLE

विषय–सूची

	आमुख	vii
	प्राक्कथन	ix
1.	परिचयात्मक	1
2.	धर्म और राजव्यवस्था की अन्तःक्रिया और मनुस्मृति	35
3.	धर्म और राजव्यवस्था की अन्तःक्रिया और अर्थशास्त्र	90
4.	धर्म और राजव्यवस्था तथा मनुस्मृति और अर्थशास्त्र की तुलना	147
5.	धर्म और राजव्यवस्था तथा धर्मनिरपेक्षता	192
6.	निष्कर्ष	236
	संदर्भ ग्रन्थ सूची	286

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

आमुख

मनुस्मृति एवं कौटिल्य का अर्थशास्त्र दोनों महान ग्रंथ केवल संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था के दर्पण ही नहीं अपितु पूरे भारतीय समाज एवं राजनीति के दो प्रमुख प्राचीन स्तंभ है। दोनों ही राज धर्म एवं तत्कालिक समाज व्यवस्था को द्योतित करते है। वस्तुतः प्राचीन भारत में राजनीति का सर्वप्रमुख आधार ही धर्म था। अतः धर्म एवं राजनीति एक दूसरे से किसी भी क्षेत्र में पृथक न थे।

प्रस्तुत पुस्तक भी प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में धर्म की महत्ता व इसके धर्मनिरपेक्ष स्वरूप की उपादेयता को अभिव्यक्त करती है। पुस्तक में धर्म एवं राजनीति जैसे जटिल एवं संवेदनशील विषय की उत्तम मीमांसा की गई है। साथ ही, मनु एवं कौटिल्य के काल में भारतीय राजनीतिक चिंतन में धर्म की प्रधानता के अतिरिक्त आधुनिक धर्मनिरपेक्ष भारत के धर्म के परिवर्तित स्वरूप की भी अच्छी व्याख्या की गई हैं।

इस पुस्तक में जहां एक ओर धर्म एवं राज व्यवस्था की अंतःक्रिया के साथ–साथ, धर्म की सटीक व्याख्या तथा राजा व प्रजा दोनों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में धर्म की अपरिहार्यता का उल्लेख किया गया है; वहीं दूसरी ओर 'मनुस्मृति' और 'अर्थशास्त्र' में निहित धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा एवं आधुनिक भारतीय संविधान में अपनाई गयी धर्मनिरपेक्षता की धारणा में विद्यमान अद्‌भुत समानता को भी सिद्ध किया गया है।

SAMPLE

पुस्तक में समस्त अध्याय अत्यंत श्रम पूर्वक लिखे गये है। भारतीय राजनीति में धर्म एवं धर्मनिरपेक्षता के संबंध में जो विचार मनु व कौटिल्य के समय से चला आ रहा है, वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है, इस धारणा के साथ लेखिका ने पूरा न्याय किया है। मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि यह कृति, भारतीय विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में समाज–विज्ञान संकाय के विद्यार्थियों, शोधार्थियों के लिए ही नहीं, वरन आधुनिक नीति–निर्माताओं हेतु भी उपयोगी सिद्ध होगी।

(टीकाराम शर्मा)

टीका राम शर्मा
संयुक्त शासन सचिव,
विधि विभाग, शासन सचिवालय
राज सरकार, जयपुर

नमूना • SAMPLE

प्राक्कथन

प्राचीन भारत में राज्य और शासन की संस्थाओं का विकास हुआ। इन सभी संस्थाओं और विचारों का आधार धर्म था। यह एक अकाट्य सत्य है कि प्राचीन भारत में राजनीति का सर्वप्रमुख आधार ही धर्म था; अतः धर्म और राजनीति एक–दूसरे से किसी भी क्षेत्र में पृथक न थे। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय राजनीति आधुनिक राजनीति से पूर्णतया भिन्न थी। प्राचीन राजनीति में धर्म को ही सर्वोपरि माना और जीवन के प्रत्येक कार्य को धर्म से सुशासित रखा। प्राचीन भारत में राजा धर्म से बँधा था तथा राजा का व्यक्तिगत जीवन और उसकी दैनिक दिनचर्या धर्म से नियमित थे। परिजन तथा पुरजन, यहाँ तक कि शत्रु के साथ भी उसका संबंध धर्म के आधार पर था और युद्ध विषयक नीति भी धर्म–निर्दिष्ट थी। केवल राजा ही नहीं प्रजा भी अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सदा ही धर्म का पालन करती थी।

जब पक्षी कुल प्रातःकाल मधुर गीत गाते हैं और भगवान की महिमा का कीर्तन करते हैं; तब कहा जाता है कि यह पक्षियों का धर्म है, अर्थात् ''धर्म'' शब्द का स्वभाव के अर्थ में व्यवहार किया जाता है। ''धर्म'' ऐसे नियमों को भी कहते हैं, जिनका किसी समाज या किसी सम्प्रदाय को अवश्य पालन करना चाहिए। सत्य और न्याय का अनुगामी होने के लिए जो सनातन रीति–नीतियाँ हैं, उनको भी धर्म कहते हैं। यथार्थ धर्म तो वह है, जिसके द्वारा हम मनुष्य और देवता में जो संबंध है, उसकी धारणा व्यक्त करते हैं – जैसे वह उपास्य है और मनुष्य उपासक है, वह भगवान है और मनुष्य भक्त है। तभी तो मनुष्य भगवान

को ईश्वर समझ कर उसकी आराधना करता है – यह उसका धर्म है। कोई संस्कृति या सभ्यता धर्म के आधार के बिना स्थिर नहीं रह सकती। ''श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान्सवधर्मे निविशेत वै'' अर्थात् वेद के प्रमाण से कर्तव्य जानकर निश्चय कर के पण्डित अपने धर्म में स्थित रहें।

रिलीजन (Religion) लैटिन भाषा के शब्द रेलिगरे (Religare) से निकला है, जिसका अर्थ होता है बाँधना। इस व्युत्पत्ति के आधार पर यदि रिलीजन को समझा जाये तो उसका अर्थ उस वस्तु से होगा जो आराध्य तथा आराधक, उपास्य तथा उपासक को बाँधती है। वास्तव में धर्म का यही सृजनात्मक स्वरूप रहा है। पर भारतीय दृष्टिकोण से धर्म शब्द का अर्थ और भी व्यापक है।

महाभारत में धर्म शब्द की व्युत्पत्ति ''धृ'' (धारण करना) नामक धातु से सम्बद्ध है। अतः यहाँ धर्म का अर्थ वह वस्तु है, जो समस्त विश्व को धारण कर रही है। इसीलिए तो कणाद ने धर्म को उन्नति एवं उत्कर्ष का कारक माना है। वास्तव में धर्म एक ऐसी आधारशिला है, जिस पर व्यक्ति अपना उत्कर्ष कर सकता है।

धर्मशास्त्रकारों ने मानव के सामान्य धर्मों की चर्चा करते हुए नैतिक गुणों को बहुत महत्व दिया है और इनके पालन के लिए भी बल दिया है, किन्तु धर्मशास्त्र में उनका सीधा सम्बन्ध व्यावहारिक जीवन से था, अतः उन्होंने सामान्य धर्म की अपेक्षा वर्णाश्रम धर्म की विशद् व्याख्या करना अधिक उचित समझा। इसी प्रकार प्राचीन काल से पुरूषार्थ का भी भारतीय राजनीतिक चिन्तन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। चार पुरूषार्थ कहे गये हैं – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जिनमें अन्तिम तो परम लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति किसी किसी को ही हो पाती हैं, अधिकांश के लिए यह केवल आदर्श मात्र है। काम सबसे निम्न श्रेणी का पुरूषार्थ है, इसे केवल मूर्ख की सर्वोत्तम पुरूषार्थ मानते हैं।

भारतीय संस्कृति में धर्म का अर्थ सम्प्रदाय कदापि नहीं है। धर्म का अर्थ है सदाचरण और कर्तव्य पालन। सामान्य प्रजाजन का सत्य, अहिंसा आदि को अपनाते हुए राज्य और राजा के प्रति निष्ठा रखना, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने–अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना,

राजा द्वारा प्रजा रंजन के साथ और राज्य की सुरक्षा–रक्षा और सैनिकों द्वारा युद्ध नियमों का पालना करना ये सभी आचरण धर्म हैं और सर्वमुखी उन्नति की सिद्धि करने वाले हैं। अतः अपने कर्तव्य का पालन करना धर्म है और अपने कर्तव्य से हटना अधर्म है।

यह ग्रन्थ आंशिक रूप से संशोधित उस शोध–प्रबन्ध पर आधारित है जो मैंने 2017 में कोटा विश्वविद्यालय में पीएच.डी. डिग्री हेतु प्रस्तुत किया था। ग्रन्थ के अध्ययन को सरल बनाने की दृष्टि से इसे छः अध्यायों में विभाजित किया गया है –

प्रथम अध्याय में, धर्म का परिचय, भारतीय राजनीतिक चिन्तन में धर्म का महत्व, मनुस्मृति एवं अर्थशास्त्र में धर्म और राजनीति की अन्तःक्रिया, धर्म, राज व्यवस्था और धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। परिचयात्मक इस अध्याय में प्रस्तुत शोध के उद्देश्य, महत्व व शोध प्रविधि पर भी प्रकाश डाला गया है। शोध कार्य की परिकल्पना स्पष्ट करते हुए शोध ग्रन्थ में सहायक कतिपय उपलब्ध साहित्य की समीक्षा का प्रयास भी किया गया है।

द्वितीय अध्याय में, मनुस्मृति में धर्म और राज व्यवस्था की अन्तःक्रिया का अध्ययन प्रस्तुत किया है। मनु के अनुसार ''वेदोखिलो धर्म मूल'' अर्थात् सम्पूर्ण वेद, वेद के जानने वालों की स्मृति और उनका शील, धार्मिकों का आचार और अपने मन की प्रसन्नता में धर्म के मूल हैं। वेदों को मानव के कर्तव्य का निर्धारण का आधार स्वीकार किया गया है। चार युगों, चार वर्णाश्रमों की अवधारणा तथा तदनुरूप निर्धारित कर्तव्यों के पालन को ''धर्म'' माना गया है। प्रत्येक युग में मनुष्यों के अलग–अलग धर्म निर्धारित किए गए हैंः सतयुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ ओर कलियुग में दान को प्रमुख माना गया है। मनु ने अर्थ व काम की अपेक्षा धर्म को श्रेष्ठ माना है तथा धर्म को कभी न त्यागने की बात कही है। उनका मानना है कि मरने के पश्चात परलोक में व्यक्ति के साथ केवल धर्म ही जाता है। मनु के अनुसार ''नष्ट हुआ धर्म कहीं हमको न मारे'' यह विचार कर धर्म का नाश नहीं करना चाहिए।

मनु का धर्म मूलतः राजधर्म है वह समाज–व्यवस्था, अर्थ–व्यवस्था, दण्ड–विधान, प्रशासन, शासन–प्रबन्ध, करारोपण, न्याय इन सभी संदर्भों में अधिकांश दायित्व राजा पर डालता है ताकि वह धर्म की स्थापना कर सके और स्थापित धर्म की रक्षा कर सके।

तृतीय अध्याय में, अर्थशास्त्र में धर्म और राज व्यवस्था की अन्तःक्रिया प्रस्तुत की गई है। प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में धर्मशास्त्र की परम्परा के समान ही अर्थशास्त्र की परम्परा भी उल्लेखनीय है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में धर्म को महत्वपूर्ण स्थान दिया है किन्तु उसका मानना है कि धर्म, अर्थ और काम में 'अर्थ' ही प्रधान है क्योंकि धर्म और काम अर्थ मूलक होते हैं अर्थात् अर्थ ही इन तीनों का कारण है। कौटिल्य राज्य के कार्य क्षेत्र में मनुष्य जीवन के धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक समस्त क्रियाकलापों को निहित मानते हैं। कौटिल्य आदर्शवादी विचारक न होकर एक यथार्थवादी विचारक थे। यही कारण है कि हमें अर्थशास्त्र में आदर्शात्मक बातों, वर्णाश्रम, धर्म आदि के बारे में उतनी जानकारी नहीं मिलती जितनी कि व्यावहारिक बातों की, राज्य को बनाये रखने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद सभी उपायों को अपनाने की मिलती है।

आंतरिक नीति में कौटिल्य का राज्य ब्राह्मण प्रमुख समाज–व्यवस्था वाला है तथा राज्य की बाह्य नीति भी धार्मिक महत्व के द्वारा ही निर्देशित है। कौटिल्य ने राजा के लिए ''धर्म–प्रवर्तक'' शब्द का प्रयोग किया है।

चतुर्थ अध्याय में, मनुस्मृति और अर्थशास्त्र में धर्म और राज व्यवस्था का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। जहाँ मनु एक आदर्श व्यवस्था की स्थापना करते हैं, कौटिल्य ने अपनी व्यवस्था में व्यावहारिकता और यर्थाथता को स्थान दिया है।

मनु के राज्य का झुकाव जीवन के भौतिक पक्ष की अपेक्षा आध्यात्मिक प्रतीत होता है जबकि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य का झुकाव भौतिक पक्ष की ओर अधिक है।

कौटिल्य की राज–व्यवस्था मनु की राज–व्यवस्था की अपेक्षा अधिक जटिल समस्याओं से ग्रस्त व दण्ड और अर्थ के ऊपर आधारित

प्रतीत होती है। मनु ने सर्वत्र धर्म को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है।

मनु का राजा दैवीय अंशों से युक्त है। कोई भी उसके बनाये नियमों का उल्लघंन नहीं कर सकता है। मनु का संप्रभुता का सिद्धान्त राजनीतिक शक्ति की अपेक्षा नैतिकता की शर्तो पर आधारित है, जबकि कौटिल्य का मानना है कि व्यवहार में कोई भी दैवीय शक्ति संप्रभु के चारों तरफ नहीं है।

मनु के राजदर्शन में तर्क का कोई स्थान नहीं है, धर्म की प्रमुख है। मनु ने तीन विधाओं त्रयी, वार्ता और दण्डनीति में वेद को ही मुख्य माना है जबकि कौटिल्य के अनुसार आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीति चार विद्यायें हैं। आन्वीक्षकी तार्किक प्रक्रिया है, सब धर्मों का आश्रय भूत है।

मनुस्मृति में प्रत्येक कर्म के पीछे धर्म की शक्ति या प्रेरणा है, अर्थशास्त्र में अर्थ की।

मनु और कौटिल्य दोनों ही राजा का प्रमुख धर्म प्रजा का कल्याण मानते हैं। दोनों की वैचारिक भिन्नता को हम किसी विरोध की स्थिति न मानकर समय के अनुरूप राज्य की प्रकृति में आया अन्तर मान सकते हैं।

पंचम अध्याय में, धर्म और राजव्यवस्था तथा धर्म निरपेक्षता के दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को सिद्ध किया गया है। धर्म के स्वरूप में परिवर्तन का तात्पर्य इसकी प्रासंगिकता में कमी आना नहीं है। वर्तमान में भी राजनीति को दुर्नीति, कपटाचारण व भ्रष्टाचार से बचाने के लिए धर्म की आवश्यकता है। धर्म से ही विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है।

भारत प्राचीन काल से ही धर्म प्रधान देश रहा है। पश्चिम के कतिपय प्रगतिशील देशों ने अपने यहाँ के प्रचलित प्रदान धर्म को राजधर्म के रूप में ग्रहण कर रखा है। फिर भारत में नये संविधान और लोकतंत्र की स्थापना करते समय पंथ निरपेक्षता का सिद्धान्त क्यों अपनाया गया?

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारत में साम्प्रदायिक राजनीति का विकास हुआ, जिसके परिणामस्वरूप देश का विभाजन हुआ। इस घटना चक्र से भारतीय संविधान निर्माताओं ने यह शिक्षा ली, कि धर्म

और सम्प्रदाय को राज्य और राजनीति से पृथक रखा जाना चाहिए। भारत जैसे देश में धार्मिक परम्पराओं के आपसी संवाद से सेकुलरवाद निकलना चाहिए था, लेकिन कृत्रिम तरीके से विकसित हुए राज्य द्वारा क्रियान्वित किये जाने के कारण सेकुलरवाद को प्रशासकीय और कार्य विधिक प्राथमिकताएं तो मिल गई पर वह सामाजिक प्रामाणिकता हासिल करने में संघर्षरत है।

षष्टम अध्याय में, समग्र मूल्यांकन करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। धर्म एक गतिशील विचार है जिसकी परिस्थितिगत व्याख्या देश और काल के अनुरूप भिन्न–भिन्न हो सकती हैं। धर्म सार्वकालिक विचार है, संभवतः प्राचीन राजनीति चिंतन में धर्म की कतिपय व्याख्याएं आज प्रासंगिक न हों किन्तु निर्विवाद है कि प्रत्येक युग का एक धर्म होता है, धर्म के चरण काल के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं, किन्तु उसकी प्रासंगिकता फिर बनी रहती है। प्राचीन भारतीय राजनीति चिन्तन की यह विरासत आज भी राजनीति विचारों के अध्येताओं के लिए न केवल चिन्तन और मनन अपितु शोध का विषय है।

पुस्तक के अन्त में विषय से संबंधित संदर्भ ग्रन्थों की एक सूची भी प्रस्तुत की गई है जो इस विषय पर अधिक जानकारी चाहने वालों के लिए अधिक उपयोगी होगी और भावी अध्ययनकर्ताओं के लिए मार्गदर्शक साबित होगी।

किसी भी की सफलता गुरूजन के निर्देशन, मित्र, सहयोगी व संस्थानों के सहयोग पर निर्भर करती है, अतः उनके प्रति आभार व्यक्त करना मेरा धर्म है।

सर्वप्रथम धन्यवाद उस ईश्वर को जिसकी अनुकम्पा से यह महत्वपूर्ण कार्य संभव हो पाया है। मैं अपने शोध निदेशक डॉ0 फूल सिंह गुर्जर, सह–आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय, झालावाड़ के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने न केवल इस विषय पर अध्ययन के लिए प्रेरित किया, व आत्मीय वातावरण प्रदान किया अपितु उचित मार्गदर्शन व विद्वतापूर्ण दिशा–निर्देश दिये।